अमरीक सिंह लायलपुरी

बनाम

भारत संघ व अन्य

(दीवानी अपील संख्या 5075/2005)

21 अप्रैल, 2011

(जी०एस सिंघवी और अशोक कुमार गांगुली, न्यायमूर्ति)

दिल्ली नगर निगम अधिनियम 1957 धारा 347 डी-अपीलीय प्राधिकरण के आदेश के विरूद्घ अपील- डीएमसी अधिनियम की धारा 347 डी और एनडीएमसी अधिनियम की धारा 256 के अन्तर्गत अपीलीय न्यायाधिकरण के आदेशों की अपील प्रशासक को की जायेगी- दोनो अधिनियमों में सिविल न्यायालय का क्षेत्राधिकार वर्जित किया गया- डीएमसी अधिनियम की धारा 347 डी और एनडीएमसी अधिनियम की धारा 256 की संवैधानिकता को चुनाैती दी गयी- अभिनिर्धारित: डीएमसी अधिनियम की धारा 347 डी और एनडीएमसी अधिनियम की धारा 256 संवैधानिक रूप से वैध नहीं है- उपरोक्त दोनो प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण करते हैं। इस कारण असंवैधानिक घोषित किये- इस मत के कारण जब तक उक्त अधिनियम में न्यायिक प्राधिकारी का गठन नहीं किया जाता, तब तक धारा 347 डीएमसी एक्ट की धारा 347 डी व एनडीएमसी एक्ट की धारा 256 के अन्तर्गत प्रशासक को की

गयी अपीलें जिला न्यायाधीश द्वारा सुनी जाएगी- उक्त प्रावधानों के अन्तर्गत लंबित अपीलें जिला न्यायाधीश, दिल्ली के न्यायालय में अन्तरित की जाएगी- तथापि उक्त दोनो प्रावधानों के अन्तर्गत प्रशासक द्वारा लिये गये निर्णय भविष्यवर्ती संभावित आवर रूलिंग के सिद्घांतों के मददेनजर दुबारा नहीं खोला जावेगा। - नई दिल्ली नगर निगम काउंसिल अधिनियम 1994- धारा 256।

इस अपील में विचार हेतु ये प्रश्न उत्पन्न हुए कि क्या दिल्ली नगर निगम अधिनियम 1957 और नई दिल्ली नगर निगम काउंसिल अधिनियम 1994 के अन्तर्गत गठित अपीलीय न्यायाधिकरण के आदेशों के विरूद्घ अपील प्रशासक द्वारा सुनी और निर्णित की जाएगी और क्या डीएमसी अधिनियम की धारा 347 डी व एमडीएमसी अधिनियम की धारा 256 संवैधानिक रूप से वैध है।

अपील स्वीकार करते हुए अभिनिर्धारित- किया गया ।

1. धारा 347 ए और 347 सी उपखण्ड (7) के प्रावधानों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि अपीलीय न्यायााधिकरण का संचालन ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जावेगा जो जिला न्यायाधीश या अतिरिक्त जिला न्यायाधीश है, या रहा हो और कम से कम दस वर्ष तक भारत में न्यायिक पद धारण किया हो। (धारा 347 ए उपधारा (3)) जहां तक धारा 347 सी का प्रश्न है, यह बहुत स्पष्ट है कि इस तरह के न्यायाधिकरण में

कुछ मामलों में सिविल प्रकिया संहिता के अन्तर्गत मामले की सुनवायी करने वाले सिविल न्यायालय के समान नियम होंगे। धारा 347 की उपधारा 7 के खण्ड (एफ) में यह प्रावधान है कि ऐसे न्यायाधिकरण के समक्ष कार्यवाही भारतीय दंड संहिता की धारा 196 के प्रयोजन के लिए धारा 193 और धारा 228 के अर्थ के भीतर न्यायिक कार्यवाही होगी और प्रत्येक अपीलीय न्यायाधिकरण दंड प्रकिया संहिता के अध्याय 26 और धारा 195 के प्रयोजन से सिविल न्यायालय समझा जाएगा। एनडीएमसी अधिनियम की धारा 253 के प्रावधान भी वस्तुतः इसी तर्ज पर है। एनडीएमसी अधिनियम की धारा 253 की उपधारा 3 के अन्तर्गत अपीलीय न्यायाधिकरण में एक व्यक्ति तब तक पीठासीन अधिकारी के रूप में नियुक्ति का पात्र नहीं होगा, जब तक कि वह जिला न्यायाधीश या अतिरिक्त जिला न्यायाधीश नहीं हो, या नहीं रहा हो और दस वर्ष तक न्यायिक पद धारण नहीं किया हो। इसी प्रकार एनडीएमसी अधिनियम की धारा 255 वस्तुतः उक्त अधिनियम की धारा 347 सी की उपधारा 7 के समतुल्य है। इस प्रकार उक्त दोनो प्रावधानों को पढने से यह स्पष्ट है कि उक्त संविधियों के अन्तर्गत गठित अपीलीय न्यायाधिकरण सिविल न्यायालय की सुविधायों के साथ अर्द्घन्यायिक निकाय है और वे काफी अनुभवी न्यायिक अधिकारियों द्वारा संचालित होते हैं। अपने कर्तव्यों के निर्वहन में ये निकाय अपने कुछ कार्यो के संबंध में सिविल न्यायालय के रूप में कार्य करते हैं और ऐसे निकायों के समक्ष न्यायिक कार्यवाही। दोनो

संविधियों के अन्तर्गत ऐसे अपीलीय न्यायाधिकरण के आदेशों के विरूद्घ अपील का प्रावधान है।

2.1 डीएमसी अधिनियम की धारा 347 डी के अन्तर्गतऐसी अपील प्रशासक के समक्ष होगी। इसी प्रकार एनडीएमसी अधिनियम की धारा 256 के अन्तर्गत अपील प्रशासक के समक्ष की जाएगी। ये दोनों धारांए अर्थात उक्त अधिनियम की धारा 347 डी और एनडीएमसी अधिनियम की धारा 256 समान शर्तो में समाहित है। उक्त अधिनियम की धारा 347 इ व एनडीएमसी एक्ट की धारा 257 के अनुसार दोनो अधिनियमों में सिविल न्यायालय का क्षेत्राधिकार वर्जित किया गया है। डीएमसी अधिनियम और एनडीएमसी अधिनियम में प्रशासक की परिभाषाओं की तुलना करने से यह स्पष्ट है कि उपरोक्त दोनो परिभाषाओं में अधिक अन्तर नहीं है तथा प्रशासक से तात्पर्य "राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली के उपराज्यपाल" से है।

इण्डो चाइना स्टीम नेविगेशन कम्पनी लिमिटेड बनाम जसजीत सिंह, अतिरिक्त क्लेक्टर- कस्टम, कलकत्ता, और अन्य **ए०आइ०आर 1964-एससी 1140;** हरिनगर शुगर मिल्स लि० बनाम श्याम सुन्दर झुनझुनवाला और अन्य **ए०आइ०आर 1961 -एच०सी, 1669- अभिनर्धारित- लागू नहीं होते।**

2.2 भले ही उपरोक्त दो अधिनियमों के अन्तर्गत प्रशासक राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली का उपराज्यपाल हो सकता है, जो एक उच्च

संवैधानिक प्राधिकारी हो सकता है, लेकिन इस बात पर विवाद नहीं किया जा सकता कि उक्त प्राधिकारी एक कार्यकारी प्राधिकारी हो। (पैरा 21) (573-सी-डी)

2.3 एक पल के लिए भी यह सुझाव नहीं दिया गया कि प्रशासक, जो दिल्ली में उपराज्यपाल हैं, स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं कर रहा है। प्रश्न यह है कि विधि के शासन और न्यायिक पुनर्विलोकन की अवधारणा को ध्यान में रखते हुए, क्या न्यायिक या अर्द्घन्याायिक प्राधिकारी द्वारा लिये गये निर्णय की कार्यकारी प्राधिकारी द्वारा समीक्षा, जिसमें न्यायालय की रूकावटें शामिल हैं, की अनुमति है। पी. संभामूर्ति और एल० चन्द्र कुमार में इस न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त स्थिर राय के मददेनजर दिल्ली नगर निगम अधिनियम 1957 की धारा 347 डी और एनडीएमसी अधिनियम की धारा 256 संवैधानिक रूप से वैध नहीं है। उपरोक्त दोनो प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 14 के विरूद्घ होने के कारण असवैंधानिक घोषित किये जाते हैं। इस निर्णय के मददेनजर जब तक उपरोक्त अधिनियमों के अन्तर्गत एक उचित न्यायिक प्राधिकरण स्थापित नहीं हो जाता, तब तक दिल्ली नगर निगम अधिनियम 1957 की धारा 347 डी और एनडीएमसी अधिनियम की धारा 256 के अन्तर्गत प्रशासक को की गयी अपीलें जिला न्यायाधीश दिल्ली को की जाएगी। उपरोक्त प्रावधानो के अन्तर्गत संस्थित सभी लंबित अपीलें जिला न्यायाधीश दिल्ली के न्यायालय में स्थानान्तरित कर दी जाएगी। यद्यपि उपरोक्त दोनो प्रावधानों के अन्तर्गत प्रशासक

द्वारा पहले ही लिये गये निर्णयो को संभावित आेवर रूलिंग के सिद्धांतों के मददेनजर दुबारा नहीं खोला जावेगा।

पी. संभामूर्ति व अन्य बनाम आंध्रप्रदेश राज्य व अन्य **(1987) 1 एससीसी 362,** एल. चन्द्रकुमार बनाम भारत संघ व अन्य **एआईआर 1997 एससी 1125,** भारत संघ बनाम आर.गांधी, अध्यक्ष, मद्रास अधिवक्ता संघ **(2010) 11 एससीसी-1-भरोसा किया ।**

न्यायिक दृष्टांत

एआईआर 1964 एससी 1140	**अभिनिर्धारित लागू नहीं**	**पैरा 17**
एआईआर 1961 एससी 1669	**अभिनिर्धारित लागू नहीं**	**पैरा 19**
(1987) 1 एससीसी 362	**भरोसा किया**	**पैरा 14, 24**
एआईआर 1997 एससी 1125	**भरोसा किया**	**पैरा 16, 24**
(2010) 11 एससीसी 1	**भरोसा किया**	**पैरा 24**

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिका - दीवानी अपील संख्या 5075/2005

दिल्ली उच्च न्यायालय, नई दिल्ली के दीवानी याचिका 42/2004 (दीवानी) के निर्णय व आदेश दिनांक 07.01.2004 में।

हरीश एन. साल्वे, इंद्रा साहनी (अमीकस क्यूरी) - अपीलार्थी की और से।

हरीश चन्द्र, नगेन्द्र राय, राकेश कुमार खन्ना, चेतन चावला, रेखा पांडे, मुकेश वर्मा, प्रवीण स्वरूप, संजीव सैन, सूर्या कांत, सीमा राय, पूर्णीमा जोहरी - प्रत्यर्थी की और से।

न्यायालय का निर्णय **गांगूली जे.** द्वारा पारित किया गया-

1. इस अपील में दिल्ली नगर निगम अधिनियम 1957 की धारा 347 डी की संवैधानिक वैधता का मुख्य प्रश्न उठाया गया है। (इसके बाद उक्त अधिनियम के रूप में संदर्भित) इसी तरह के प्रावधान नई दिल्ली नगर पालिका परिसर अधिनियम 1994(इसके बाद एनडीएमसी अधिनियम के रूप में संदर्भित), की धारा 256 में भी है।

2. यह प्रश्न अपील कर्ता द्वारा संस्थित रिट याचिका में उठाया गया था, जो पेशे से पत्रकार हैं और ललकार नामक उर्दू साप्ताहिक का संपादक है। याचिका में यह आग्रह किया गया कि अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, श्री डी०एस माथुर को उक्त अधिनियम की धारा 347 की उपधारा (1) और (2) के अन्तर्गत एमसीडी/एनडीएमसी अपीलीय न्यायाधिकारण का पीठासीन अधिकारी नियुक्त किया गया था। उनकी नियुक्ति उक्त अधिनियम की धारा 343, या धारा 347 बी के अन्तर्गत की गयी अपीलें निर्णत करने के लिए की गयी थी। श्री बी०एस माथुर को दिल्ली नगर निगम और नई दिल्ली नगर परिसर के संबंधित क्षेत्रों के जोनल इंजीनियर (भवन) द्वारा पारित आदेश से सभी अपीलों को सुनने

और निर्णित करने के लिए अपीलीय न्यायाधिकरण में नियुक्त किया गया था। यद्यपि अपीलार्थी की पीडा यह है कि अपीलीय न्यायाधिकरण के आदेश उक्त अधिनियम की धारा 347 डी के अन्तर्गत दिल्ली के प्रशासक यानि उपराज्यपाल के समक्ष अपील योग्य हैं। जनहित याचिका में मुख्य पीडा यह है कि जब किसी अपील का निर्णय एक अपीलीय प्राधिकारी द्वार किया जाता है, जिसका संचालन सिविल न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा किया जाता है, तो ऐसे प्राधिकारी के निर्णय की अपील एक कार्यकारी प्राधिकारी द्वारा नहीं सुनी जा सकती, चाहे वह कितना ही उच्च कार्यकारी प्राधिकारी क्यों न हो।

3. इस विवाद को समझने के लिए प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों पर विचार करना आवश्यक है। उक्त अधिनियम की धारा 347 ए के अन्तर्गत अपीलीय न्यायाधिकारी के गठन के प्रावधान इस प्रकार है-

"347A- अपीलीय प्राधिकरण -1. केन्द्र सरका , अधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा धारा 343 या धारा 347 बी के अन्तर्गत प्रस्तुत अपीलों पर निर्णय लेने के लिए दिल्ली मुख्यालय पर एक या एक से अधिक अपीलीय न्यायाधिकरण का गठन करेगी।

2. अपीलीय न्यायाधिकरण में एक व्यक्ति शामिल होगा, जिसे केन्द्र सरकार द्वारा सेवा के ऐसे नियमों और शर्तो पर नियुक्त किया जावेगा, जो नियमो द्वारा निर्धारित किये जा सकते हैं।

3. कोई व्यक्ति अपीलीय न्यायाधिकरण में पीठासीन अधिकारी के रूप में नियुक्ति के लिए तब तक योग्य नहीं होगा जब तक कि वह जिला न्यायाधीश या अतिरिक्त जिला न्यायाधीश हो, या रहा हो या कम से कम दस वर्षो तक भारत में न्यायिक पद पर रहा हो।

4. केन्द्र सरकार, यदि उचित समझें, ऐसी अपीलों में अन्तर्वलित मामलों का विशेष ज्ञान या अनुभव रखने वाले एक या अधिक व्यक्तियों को अपीलीय न्यायाधिकरण को उसके समक्ष की कार्यवाही में सलाह देने के लिए सहायक के रूप में नियुक्त कर सकती है। परन्तु सहायक की कोई भी सलाह अपीलीय न्यायाधिकरण पर बाध्यकारी नहीं होगी।

5. केन्द्र सरकार, अधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, क्षेत्रीय सीमाओ को परिभाषित करेगी, जिसके भीतर एक अपीलीय न्यायाधिकरण अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करेगा, और जहां विभिन्न अपीलीय न्यायाधिकरणों का एक ही क्षेत्रीय सीमाओ पर क्षेत्राधिकार है, केन्द्रीय सरकार ऐसे न्यायाधिकरणों द्वारा किये जाने वाले कार्यों का वितरण और आवंटन करेगी।

6. इस अधिनियम के अन्तर्गत अपने कार्यो का निर्वहन करने में स़क्षम बनाने के उददेश्य से , प्रत्येक अपीलीय न्यायाधिकरण के पास सेवा के ऐसे नियमों और शर्तो पर एक रजिस्ट्रार और ऐसे अन्य कर्मचारी होंगे , जो नियमों द्वारा निर्धारित किये जा सकते हैं।

बशर्ते कि रजिस्ट्रार और कर्मचारियों को नियमों के अनुसार ऐसे सभी या किसी संख्या में न्यायाधिकरणों के लिए संयुक्त रूप से नियोजित किया जा सकता है।

4. इस मामले में विवाद को तय करने के उददेश्य से, धारा 343 और 347 बी के प्रावधान प्रासंगिक नही हैं, परन्तु धारा 347 सी जो ऐसे अपीलीय न्यायाधिकरण के समक्ष प्रकिया का प्रावधान करती है, प्रासंगिक है। विशेष रूप से, धारा 347 सी की उपधारा 7 का प्रावधान विवाद का निर्णय करने के उददेश्य से प्रासंगिक है, नीचे दिया गया है-

"धारा 347 सी - अपीलीय न्यायाधिकरण की प्रकिया-

(7) प्रत्येक अपीलीय न्यायाधिकरण को इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रदत्त शक्तियों के अलावा निम्नलिखित मामलो के संबंध में वहीं शक्तियां होगी, जो सिविल प्रकिया संहिता 1908(1908 का 5) के अन्तर्गत मुकदमें की सुनवायी करते समय सिविल न्यायालय में निहित है। अर्थात

(ए) व्यक्तियों को बुलाना और उनकी उपस्थिति को सुनिश्चित करना और शपथ पर उनका परीक्षण करना ।

(बी) दस्तावेजों की खोज और निरीक्षण की आवश्यकता

(सी) शपथ पत्रों पर साक्ष्य प्राप्त करना ।

(डी) किसी न्यायालय या कार्यालय से कोइ लोक अभिलेख या उनकी प्रतियाओ की मांग करना ।

(ई) साक्षियों या दस्तावेजों के परीक्षण हेतु कमिश्नर जारी रखना और

(एफ) कोई भी अन्य मामला जो नियमों द्वारा निर्धारित किया जा सकता है और अपील की सुनवायी या निर्णय लेने अथवा उसके आदेश के निष्पादन के संबंध में अपीलीय न्यायाधिकरण की प्रत्येक कार्यवाही को धारा 193 और 228 के अर्थ में न्यायिक कार्यवाही माना जाएगा और भारतीय दंड संहिता की धारा 195 के प्रयोजन के लिए, और प्रत्येक अपीलीय न्यायाधिकरण को दंड प्रकिया संहिता 1973 की धारा 195 और अध्याय XXVI के प्रयोजनो के लिए एक सिविल न्यायालय माना जाएगा। (1974 का 2)

5. धारा 347 ए और धारा 347 सी, उपखण्ड (7) के प्रावधानों के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि उक्त न्यायाधिकरण का संचालन ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जावेगा, जो जिला न्यायाधीश या अतिरिक्त जिला न्यायाधीश है या रहा है या कम से कम दस वर्षो तक भारत में न्यायिक पद धारण किया हो। (धारा 374 ए, उपखण्ड (3) जहां तक धारा 347 सी का प्रश्न है, यह बहुत स्पष्ट है कि इस तरह के न्यायाधिकरण में कुछ मामलो में सिविल प्रकिया संहिता के अन्तर्गत मुकदमे की सुनवायी करने वाले सिविल न्यायालय के समान नियम होंगे। धारा 347 की उपधारा (7) के खण्ड (एफ) में यह प्रावधान है कि ऐसे न्यायाधिकरण के समक्ष

कार्यवाही भारतीय दंड संहिता की धारा 196 के प्रयोजन के लिए धारा 193 और धारा 228 के अर्थ के भीतर न्यायिक कार्यवाही होगी और प्रत्येक अपीलीय प्राधिकरण दंड प्रकिया संहिता के अध्याय 26 और धारा 195 के प्रयोजन से सिविल न्यायालय समझा जावेगा।

6. एनडीएमसी अधिनियम की धारा 253 के प्रावधान वस्तुतः इसी तर्ज पर हैं। एनडीएमसी अधिनियम की धारा 347 ए की उप धारा (3) और धारा 253 की उप धारा (3) के अन्तर्गत कोई व्यक्ति अपीलीय न्यायाधिकरण के पीठासीन अधिकारी के रूप में नियुक्ति के लिए तब तक पात्र नहीं होगा, जब तक कि वह जिला न्यायाधीश या अतिरिक्त जिला न्यायाधीश या कम से कम 10 वर्षो तक न्यायिक पद पर रहा हो। इसी प्रकार एनडीएमसी अधिनियम की धारा 355 वस्तुतः उक्त अधिनियम की धारा 347 सी की उपधारा (7) के अनुरूप है। इसलिए उपरोक्त दोनो प्रावधानो को पढने पर यह स्पष्ट है कि उपरोक्त कानूनो के अन्तर्गत बनाये गये अपीलीय न्यायाधिकरण सिविल कोर्ट की सुविधाओ के साथ अर्द्घ न्यायिक निकाय है और वे काफी अनुभव वाले न्यायिक अधिकारियों द्वारा संचालित होते हैं। अपने कार्यो के निर्वहन में ऐसे निकाय अपने कुछ कार्यो के संबंध में सिविल न्यायालय के रूप में कार्य कर रहे हैं और ऐसे निकायो के समक्ष कार्यवाही न्यायिक कार्यवाही है।

7. यद्यपि दोनो संविधियों के अन्तर्गत ऐसे अपीलीय न्यायाधिकरण के आदेशो के विरूद्घ अपील का प्रावधान किया गया है।

8. उक्त अधिनियम की धारा 347 डी के अन्तर्गतऐसी अपील प्रशासक के समक्ष होगी। प्रासंगिक प्रावधान नीचे दिया गया है-

"धारा 347 डी- अपीलीय न्यायाधिकरण के आदेशों के खिलाफ अपील- (1) इस अधिनियम के अन्तर्गत धारा 343 या 347 बी के तहत अपील में किये गये आदेश या नोटिस की पुष्टि, संशोधन या रदद करने के लिए अपीलीय न्यायाधिकरण के आदेश के विरूद्घ प्रशासक के पास अपील की जाएगी।

(2) धारा 347 बी और धारा 347 सी की उपधारा (2) और (3) के प्रावधान और इसके अन्तर्गत बनाये गये नियम, जहां तक संभव हो, इस धारा के अन्तर्गत अपील दाखिल करने और निपटाने पर वैसे ही लागू होंगे, जैसे कि उन धाराआेें के अन्तर्गत अपील दाखिल करने और निपटाने पर लागू होते हैं।

(3) इस धारा के तहत अपील पर प्रशासक का एक आदेश, और केवल ऐसे आदेश के अधीन, धारा 347 बी के तहत अपीलीय न्यायाधिकरण का एक आदेश, और प्रशासक या अपीलीय न्यायाधिकरण के ऐसे आदेशों के अधीन, एक आदेश या नोटिस संदर्भित उस धारा की उपधारा (1) में, अंतिम होगा।

9. इसी प्रकार एनडीएमसी अधिनियम की धारा 256 के अन्तर्गत अपील भी प्रशाासक के पास होती है। दोनो धारांए अर्थात उक्त अधिनियम की धारा 347 डी और एनडीएमसी अधिनियम की धारा 256 समान शब्दो में समाहित है। दोनो अधिनियमों के अन्तर्गत उक्त अधिनयम की धारा 347 इ और एनडीएमसी अधिनियम की धारा 257 के अन्तर्गत सिविल न्यायालय का क्षेत्राधिकार वर्जित कर दिया गया है।

10. मुख्य प्रश्न जो उच्च न्यायालय के समक्ष दायर की गई रिट याचिका में उठाया गया था, वह यह था कि क्या उपरोक्त दो अधिनियमों के तहत गठित अपीलीय न्यायाधिकरण के आदेश की अपील "प्रशासक" द्वारा सुनी और तय की जा सकती है। उक्त अधिनियम की धारा 2 (1) के तहत प्रशासक शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया गया है -

“धारा 2- परिभाषाएं- इस अधिनियम में जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,-

(1) प्रशासक का अर्थ राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली के उपराज्यपाल से है, “

11. एनडीएमसी अधिनियम की धारा 2(1) के तहत, प्रशासक शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया गया है,-

“धारा 2- परिभाषाएं- इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,

(1) प्रशासक का अर्थ राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली का प्रशासक है,

12. उपरोक्त परिभाषाओं की तुलना करने पर यह स्पष्ट है कि उपरोक्त दोनों परिभाषाओं में अधिक अंतर नहीं है तथा प्रशासक से तात्पर्य “राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली के उपराज्यपाल” से है।

13. श्री हरीश साल्वे, विद्वान वरिष्ठ वकील, जो न्यायालय के अनुरोध पर इस मामले में एमिकस क्यूरी के रूप में उपस्थित हुए, ने तर्क दिया कि अपीलीय न्यायाधिकरण के आदेश से प्रशासक द्वारा अपील की सुनवाई का उपरोक्त प्रावधान हमारे संविधान में निहित न्यायिक पुनर्विलोकन की संकल्पना का उल्लंघन है।

14. हमारी संवैधानिक योजना के तहत यह तर्क दिया गया था कि एक कार्यकारी प्राधिकारी न्यायिक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश के खिलाफ अपील पर विचार नहीं कर सकता है, भले ही ऐसा न्यायिक प्राधिकार अर्ध-न्यायिक क्षमता में कार्य कर रहा हो। इस तर्क के समर्थन में, पी. सांबामूर्ति और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य,1 (1987) 1 एससीसी 362 के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया गया था, जिसमें इस न्यायालय की एक संविधान पीठ की और से मुख्य न्यायाधीश भगवती ने 32वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1973 द्वारा जोडे गए संविधान के अनुच्छेद 371डी (5) की संवैधानिक वैधता की जांच की। पी. सांबामूर्ति में, इस न्यायालय को मौजूदा मुद्दे के समान ही एक

मुद्दे पर निर्णय लेने के लिए बुलाया गया था। अनुच्छेद 371-डी के खंड (3) में आंध्र प्रदेश राज्य के लिए एक प्रशासनिक न्यायाधिकरण के निर्माण का प्रावधान है ताकि उप खंड (ए), (बी) और (सी) में उल्लिखित मामलों के संबंध में क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जा सके। हालाँकि, खंड (5) ने उक्त प्रशासनिक न्यायाधिकरण के निर्णय को राज्य सरकार की पुष्टि के अधीन कर दिया। न्यायालय ने इसे 'कानून के शासन' के सिद्धांत का उल्लंघन माना, जहाँ तक कि इसने अर्ध न्यायिक न्यायाधिकरण के निर्णय की समीक्षा करने की शक्ति कार्यपालिका के हाथों में दे दी, जो इस न्यायालय के अनुसार, न्यायिक समीक्षा के सिद्धांत का उल्लंघन है। इस न्यायालय ने कहा:

"...राज्य सरकार को प्रशासनिक न्यायाधिकरण के किसी भी आदेश को प्रभावी होने से पहले या तो राज्य सरकार द्वारा पुष्टि द्वारा या आदेश की तारीख से तीन महीने की अवधि की समाप्ति पर संशोधित या रद्द करने की शक्ति दी गई है।" इस प्रकार यह देखा जाएगा कि आदेश की तारीख से तीन महीने की अवधि खंड (5) में प्रदान की गई है ताकि राज्य सरकार यह तय कर सके कि वह आदेश की पुष्टि करेगी या इसे संशोधित या रद्द करेगी। अब लगभग निर्विवादित रूप से राज्य सरकार प्रशासनिक न्यायाधिकरण के समक्ष लाए गए प्रत्येक सेवा विवाद में एक पक्ष होगी और खंड (5) के परंतुक का प्रभाव यह है कि राज्य सरकार जो प्रशासनिक न्यायाधिकरण के समक्ष कार्यवाही में एक पक्ष है और जो इसका विरोध

करती है लोक सेवक का दावा जो राज्य सरकार के खिलाफ अपनी शिकायत के निवारण के लिए प्रशासनिक न्यायाधिकरण के समक्ष आता है, उसके पास प्रशासनिक न्यायाधिकरण के निर्णय को बरकरार रखने या अस्वीकार करने का अंतिम अधिकार होगा... ऐसा प्रावधान, कम से कम कहने के लिए चौंकाने वाला और स्पष्ट रूप से न्याय के सिद्धांतों के प्रति विध्वंसक है।" (पेज 368 देखें)

15. इस न्यायालय ने आगे स्पष्ट किया कि "...अब यदि न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग राज्य सरकार द्वारा इसके विरुद्ध दिए गए निर्णय को रद्द करके शून्य किया जा सकता है, तो यह कानून के शासन की मृत्यु की घंटी होगी। कानून के शासन का कोई मतलब नहीं रह जाएगा, क्योंकि तब राज्य सरकार के लिए कानून की अवहेलना करने और फिर भी इससे बच निकलने का रास्ता खुला रहेगा। इसलिए अनुच्छेद 371-डी के खंड (5) का प्रावधान स्पष्ट रूप से मूल संरचना सिद्धांत का उल्लंघन है।"

16. एल. चंद्र कुमार बनाम भारत संघ और अन्य, 2 एआईआर 1997 एससी 1125 में इस न्यायालय की संविधान पीठ के बाद के फैसले में, मुख्य न्यायाधीश अहमदी ने इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के विश्लेषण के बाद, सकारात्मक रूप से माना कि न्यायिक समीक्षा उचित है। हमारे संविधान की मूलभूत विशेषताओं में से एक। इस न्यायालय के इस

तरह के निष्कर्ष का स्पष्ट रूप से मतलब यह है कि किसी न्यायिक या अर्ध न्यायिक प्राधिकारी द्वारा लिए गए निर्णय की प्रशासनिक समीक्षा नहीं की जा सकती है, जिसमें अदालत की साज-सज्जा होती है। चूँकि न्यायिक समीक्षा को संवैधानिकता का आंतरिक हिस्सा माना गया है, इसलिए कोई भी वैधानिक प्रावधान जो न्यायिक या अर्ध न्यायिक निकाय द्वारा लिए गए निर्णय की प्रशासनिक समीक्षा प्रदान करता है, उपरोक्त अभिधारणा के साथ असंगत है और असंवैधानिक है।

17. इस मामले में भारत संघ के विद्वान वरिष्ठ वकील ने इंडो-चाइना स्टीम नेविगेशन कंपनी लिमिटेड बनाम जसजीत सिंह, अतिरिक्त कलेक्टर सीमा शुल्क, कलकत्ता, और अन्य 3 (एआईआर 1964 एससी 1140) के मामले में इस न्यायालय के निर्णय का हवाला देते हुए आक्षेपित निर्णय का समर्थन करने की मांग की है। उक्त निर्णय समुद्री सीमा शुल्क अधिनियम, 1878 के प्रावधानों से संबंधित है, जो एक पूर्व-संवैधानिक कानून है। इसके अलावा, समुद्री सीमा शुल्क अधिनियम की योजना यह दिखाएगी कि जब किसी पीड़ित पक्ष द्वारा अपील या पुनरीक्षण के माध्यम से कोई विवाद उठाया जाता है, तो उस विवाद का निर्णय कार्यवाही में जोड़े गए तथ्यों के आलोक में किया जाना चाहिए। और इस न्यायालय ने माना कि ऐसे प्राधिकारी का निर्णय एक ऐसे निर्णय के समान है जो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार दिया जाता है और ऐसी कार्यवाही प्रकृति में अर्ध न्यायिक होती है। इस न्यायालय ने यह भी स्वीकार किया कि भले ही

अधिनियम की धारा 167 (12ए) और धारा 183 के तहत फैसला सुनाने वाले सीमा शुल्क अधिकारी की स्थिति न्यायाधिकरण की नहीं है, लेकिन जब मामला अपील और पुनरीक्षण के चरण में पहुंचता है तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। इस तरह के तर्क के आधार पर, इस न्यायालय ने माना कि जब ऐसे विवादों का निर्णय अपीलीय या पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा किया जाता है, तो यह संविधान के अनुच्छेद 136 के अर्थ के तहत एक न्यायाधिकरण बन जाता है और ऐसे न्यायाधिकरणों को राज्य की न्यायिक शक्ति के साथ निवेश करने की आवश्यकता होती है और न्यायिक रूप से कार्य करें और वे संविधान के अनुच्छेद 136 के अर्थ के अंतर्गत न्यायाधिकरण हैं।

18. वर्तमान प्रकरण में विवाद्यक बिल्कुल अलग है. यहां विवाद्यक यह है कि क्या एक अर्ध न्यायिक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश, जिसमें एक सिविल अदालत के प्रावधान हैं, की एक प्रशासनिक प्राधिकारी द्वारा समीक्षा की जा सकती है। इसलिए, इंडो-चाइना स्टीम नेविगेशन कंपनी में पारित निर्णय भारत संघ के मामले का समर्थन नहीं करता है।

19. तीसरे प्रतिवादी के विद्वान वरिष्ठ वकील श्री नागेंद्र राय भी हरिनगर शुगर मिल्स लिमिटेड बनाम श्याम सुंदर झुनझुनवाला और अन्य (एआईआर एससी 1669) के मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ के फैसले पर भरोसा करते हुए आक्षेपित फैसले का समर्थन करना चाहते थे।

उस मामले में उठाया गया विवाद्यक शेयर के हस्तांतरण के पंजीकरण से इनकार करने की कंपनी की शक्ति का था। शेयरों के हस्तांतरण को पंजीकृत करने से इनकार करने पर, पीड़ित पक्ष के पास कंपनी अधिनियम के तहत राहत पाने के लिए दो उपाय हैं। एक रजिस्टर में सुधार के लिए न्यायालय में आवेदन करना था और दूसरा शेयर पंजीकृत करने से इनकार करने वाली कंपनी के फैसले के खिलाफ अधिनियम की धारा 111 के तहत केंद्र सरकार से अपील करना था। ऐसी स्थिति में, इस न्यायालय ने माना कि जब सरकार, धारा 111 खंड (3) के तहत अपील की अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए कार्य कर रही है, तो यह कानून के अनुसार विवादों को तय करने के लिए राज्य की न्यायिक शक्ति के साथ निवेशित है। ऐसे मामले में, केंद्र सरकार एक न्यायाधिकरण के रूप में कार्य कर रही है और वह अनुच्छेद 136 के तहत इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के लिए उत्तरदायी है। (रिपोर्ट के पैरा 10 और 23 देखें)।

20. जैसा कि ऊपर बताया गया है, इस मामले में विवाद्यक यह नहीं है कि उपरोक्त वैधानिक प्रावधान के तहत प्रशासक अधिनियम के अनुच्छेद 136 के तहत एक न्यायाधिकरण है या नहीं। विवाद्यक यह है, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, कि क्या प्रशासनिक प्राधिकारी किसी न्यायिक या अर्धन्यायिक प्राधिकारी के निर्णयों की अपील सुन सकता है, जिसमें सिविल न्यायालय की सुविधाएं हैं। इसलिए, हरिनगर (सुप्रा) का निर्णय, आक्षेपित निर्णय को बरकरार नहीं रख सकता है।

21. भले ही उपरोक्त दो अधिनियमों के तहत प्रशासक राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली का उपराज्यपाल हो सकता है जो एक उच्च संवैधानिक प्राधिकारी हो सकता है, लेकिन इस बात पर विवाद नहीं किया जा सकता है कि उक्त प्राधिकारी एक कार्यकारी प्राधिकारी है।

22. दिल्ली नगर निगम के विद्वान वरिष्ठ वकील ने संविधान के अनुच्छेद 239AA के प्रावधानों का हवाला देते हुए तर्क दिया, जहां दिल्ली के संबंध में प्रावधान किए गए हैं। इस प्रश्न के उचित विवेचन के लिए , अनुच्छेद 239 एए, उप-अनुच्छेद (1) नीचे दिया गया है: -

"239AA. दिल्ली के संबंध में विशेष प्रावधान.- (1) संविधान (उनसठवां संशोधन) अधिनियम, 1991 के प्रारंभ होने की तारीख से, केंद्र शासित प्रदेश दिल्ली को राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली कहा जाएगा (इसके पश्चात इस भाग में इसे राष्ट्रीय राजधानी क्षैत्र दिल्ली के रूप में संदर्भित किया जाएगा) राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के रूप में) और अनुच्छेद 239 के तहत नियुक्त प्रशासक को उपराज्यपाल के रूप में नामित किया जाएगा"।

23. इस संबंध में, हम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार अधिनियम, 1991 के प्रावधान, अर्थात् धारा 41 और विशेष रूप से धारा 41(3) का भी उल्लेख कर सकते हैं। धारा 41 में निम्न प्रावधान है-

"41. ऐसे मामले जिनमें उपराज्यपाल अपने विवेक से काम करेगा-

(1) उपराज्यपाल निम्न मामलाें में अपने विवेक से कार्य करेगा-

(i) जो विधान सभा को प्रदत्त शक्तियों के दायरे से बाहर है, लेकिन जिसके संबंध में राष्ट्रपति द्वारा उसे शक्तियां या कार्य सौंपे गए हैं; या

(ii) जिसमें उसे किसी कानून के द्वारा या उसके अन्तर्गत अपने विवेक से कार्य करने या कोई न्यायिक या अर्ध-न्यायिक कार्य करने की आवश्यकता होती है।

(2) यदि कोई प्रश्न उठता है कि कोई मामला है या नहीं, जिसके संबंध में उपराज्यपाल को किसी कानून के द्वारा या उसके अन्तर्गत अपने विवेक से कार्य करना आवश्यक है, तो उस पर उपराज्यपाल का निर्णय अंतिम होगा।

(3) यदि कोई प्रश्न उठता है कि क्या कोई मामला ऐसा मामला है या नहीं जिसके संबंध में उपराज्यपाल को किसी भी न्यायिक या अर्ध-न्यायिक कार्य करने के लिए किसी कानून द्वारा आवश्यक किया गया है, तो उस पर उपराज्यपाल का निर्णय अंतिम होगा।

24. विद्वान वकील ने उपरोक्त दो प्रावधानों का हवाला देते हुए तर्क दिया कि प्रशासक, जो कोई और नहीं बल्कि उपराज्यपाल है, का राज्य से कोई संबंध नहीं है और वह पूरी तरह से स्वतंत्र है। इसलिए, जब वह अपील सुनता है, तो वह इसे एक स्वतंत्र अपीलीय प्राधिकारी के रूप में करता है। यह न्यायालय उपरोक्त तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ है।

एक पल के लिए भी यह सुझाव नहीं दिया गया कि प्रशासक, जो दिल्ली में उपराज्यपाल है, स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं कर रहा है। सवाल यह है: कानून के शासन और न्यायिक समीक्षा की अवधारणा को ध्यान में रखते हुए, क्या न्यायिक या अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी द्वारा लिए गए निर्णय की कार्यकारी प्राधिकारी द्वारा समीक्षा, जिसमें न्यायालय की रूकावट शामिल हैं, की अनुमति है। ऊपर चर्चा किए गए पी. संभमूर्ति और एल. चंद्र कुमार के मामले में इस न्यायालय द्वारा व्यक्त की गई सुसंगत राय के मद्देनजर, हम दिल्ली नगर निगम अधिनियम, 1957 की धारा 347 डी और एनडीएमसी अधिनियम की धारा 256 की संवैधानिक वैधता को बरकरार रखने में असमर्थ हैं। इसलिए उपरोक्त दोनों प्रावधानों को संविधान के अनुच्छेद 14 के उल्लंघन में होने के कारण असंवैधानिक घोषित किया जाता है। भारत संघ बनाम आर. गांधी, अध्यक्ष, मद्रास बार एसोसिएशन [(2010) 11 एससीसी 1] मामले में इस न्यायालय की हाल की संविधान पीठ के फैसले में, न्यायमूर्ति रवींद्रन ने सर्वसम्मत पीठ के लिए बोलते हुए कहा: -

"102. कानून के समक्ष समानता का मौलिक अधिकार और संविधान के अनुच्छेद 14 द्वारा गारंटीकृत कानूनों की समान सुरक्षा में स्पष्ट रूप से व्यक्ति के अधिकारों के निर्णय का अधिकार शामिल है, जिसका निर्णय एक ऐसे मंच द्वारा किया जाता है जो मान्यता प्राप्त सिद्धांतों के अनुरूप निष्पक्ष और स्वतंत्र तरीके से न्यायिक शक्ति का प्रयोग करता है। इसलिए

जहां कहीं इस प्रकार के अधिकारों को लागू करने के लिए अदालतों तक पहुंच को वैकल्पिक मंच पर जाने का निर्देश देकर संक्षिप्त, परिवर्तित, संशोधित या प्रतिस्थापित करने की मांग की जाती है, ऐसा विधायी अधिनियम चुनौती देने के लिए खुला है, यदि यह एक स्वतंत्र मंच द्वारा निर्णय लेने के अधिकार का उल्लंघन करता है। हालांकि एमबीए द्वारा चुनौती बुनियादी संरचना का हिस्सा बनने वाले सिद्धांतों के उल्लंघन के आधार पर है, वे संविधान के एक या अधिक स्पष्ट प्रावधानों से संबंधित हैं जिन्होंने ऐसे सिद्धांतों को जन्म दिया है। हालाँकि किसी विधायी अधिनियम के प्रावधानों की वैधता को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती है कि यह संविधान की मूल संरचना का उल्लंघन करता है, इसे संवैधानिक प्रावधानों के उल्लंघन के रूप में चुनौती दी जा सकती है जो कानून के शासन, शक्तियों के पृथक्करण और न्यायपालिका की स्वतंत्रता के सिद्धांतों को स्थापित करते हैं।"

25. इस न्यायालय के इस निर्णय के मद्देनजर, जब तक उपरोक्त अधिनियमों के तहत एक उचित न्यायिक प्राधिकरण स्थापित नहीं हो जाता, तब तक दिल्ली नगर निगम अधिनियम, 1957 की धारा 347डी के तहत और एनडीएमसी अधिनियम की धारा 256 के अंतर्गत प्रशासक को की गई अपीलें जिला न्यायाधीश द्वारा सुनी जाएगी- उक्त प्रावधानों के अन्तर्गत लंबित अपील जिला न्यायाधीश, दिल्ली के न्यायालय में स्थानांतरित की जाएगी। हालाँकि, उपरोक्त दो प्रावधानों के तहत प्रशासक

द्वारा पहले ही लिए गए निर्णयों को संभावित ओवररूलिंग के सिद्धांतों के मद्देनजर दोबारा नहीं खोला जाएगा।

26. इसलिए, उच्च न्यायालय के फैसले को रद्द किया जाता है और अपील की अनुमति दी जाती है। हालाँकि, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

अपील स्वीकार की गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल सुवास की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी सुरेश कुमार-प्रथम (आरजे0517½ द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण : यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उददेश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और अधिकारिक उददेश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उददेश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।